Gyanvividha, Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026 : PP-21-24

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026
Page No.- 21-24
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. प्रशांत कुमार चौरे
देवरी खैरागढ़ (छ.ग.).

Corresponding Author :

डॉ. प्रशांत कुमार चौरे
देवरी खैरागढ़ (छ.ग.).

स्मारक प्रतिमाएँ उद्भव - विकास एवं उद्देश्य (संदर्भ - दुर्ग संभाग)

प्रतिमाओं का निर्माण तथा देव पूजा का प्रारंभिक काल अनिश्चित व अविज्ञात है। जो वर्तमान में विवेचना का विषय है। यद्यपि प्राचीन काल से ही प्रतिमा शब्द का प्रयोग होता आ रहा है। योगाचार्य पतंजलि ने महाभाष्य में अर्चा शब्द प्रयुक्त किया है। यह ऐसी प्रतिमाएँ थी, जिसे मौर्य शासक स्वर्ण प्राप्ति के लिए निर्मित करवाते थे।

मौर्ये हिरण्यार्थिभिः अर्चा प्रकल्पिता ।।[1]

ऋग्वेद के चैथे मंडल में इंद्र प्रतिमा के विक्रय का उल्लेख प्राप्त होता है कि कौन मेरे इंद्र को क्रय करना चाहता है :

क इमं दशभिर्मम इंद्र क्रीणाति धेनुभिः ।।[2]

वैदिक युग में आर्यों के द्वारा प्रकृति के विविध प्रत्यांगों का देवत्व के रुप में निरुपण किया गया - यथा, अग्नि, वायु, जल, सविता, अंतरिक्ष इत्यादि। इस काल में प्रतिमोपासना को लेकर विद्वानों में मतभेद है। पाश्चात्य विद्वान ब्लूम् फिल्ड का कथन है कि, आर्य सभ्यता में हालांकि विभिन्न देवताओं की कल्पना तो की गई है किंतु उन्हे प्रतिमा का स्वरुप प्रदान नहीं किया गया है।[3] विष्णु पुराण के अनुशीलन पश्चात् विल्सन कहते हैं कि वैदिक काल की उपासना का मुख्य आधार प्रतिमा नही थी, बल्कि यज्ञं तथा आहुतियाँ थीं।[4] किंतु उपरोक्त मत का खण्डन करते हुए डॉ. वोल्लेनसेन कहते हैं- वैदिक काल के लोग प्रतिमाओं से परिचित तो थे ही साथ ही वे इनकी पूजा भी करते थे।

वेदों के काल में प्रतिमा शब्द को यज्ञ के समानांतर प्रयुक्त किया गया है।[5] इसी तरह ऋग्वेद शिश्नदेवाः का उल्लेख करता है। परंतु इससे किसी भी प्रकार से प्रतिमा निर्माण संबंधि साक्ष्य नही मिलता है। जबकि देवरुपाकृति, देवप्रतिमा इत्यादि शब्द प्रतिमा निर्माण संबंधि विषयक दिशा की ओर इंगित कराते है। तथापि वैदिक युगीन प्रतिमा निर्माण पर विशेष प्रकाश नही पड़ता है। हाँ, इतना कहना यथोचित

लगता है कि धार्मिक भावना से अभिभूत वैदिक समाज में उपासना के साथ ही प्रतिमा या प्रतीक की कल्पना अवश्य ही रही होगी।

प्राचीन काल में आततायियों, दुष्टप्रवृत्तियों व दूराचारियों के कारण जन सामान्य की सुरक्षा का प्रश्न जटिल हो गया था, अतएव सर्व शक्ति संपन्न सगुण अनंत ब्रह्मा की साकारता स्वीकार की गई। जिसके उपासना अथवा आह्वान से उनकी रक्षा हो तथा आत्मबल मिल सके। प्रतिमा पूजा की अविज्ञात परंपरा में श्रद्धा और कलाप्रियता जैसी भावना का समन्वय दृष्टव्य होता है, जिसको माध्यम बनाकर किसी अदृश्य शक्ति की कल्पनाजन्य उपासना लोगों ने परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रुप से किया। वास्तव में हिंदू प्रतिमा विज्ञान भारतीयों के जीवनानुरुप कार्यकलापों पर आधारित है। प्रतिमा का उद्भव तथा विकास, प्राचीन मनुष्यों का प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव तथा अनुग्रह परक दृष्टिकोण था, जिसे वह निराकार नही साकार रुप में साक्षात्कार करके उपासना की दृष्टि से श्रद्धानवत् कर सकते थे। इस प्रकार योगी या उपासक के लिए ध्यान को उध्र्वाधर केन्द्रित करने मूर्ति या प्रतिमा की उपादेयता आवश्यक मानी गई।

भारतीय धर्म और दर्शन के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रतिमा पूजा की उपादेयता अभिष्ट को सिद्ध करना था। इस हेतू पूजा का विधान मनीषीयों द्वारा किया गया। जिससे प्रतीकात्मक भाव को आकार मिल गया साथ ही जन मानस के चित्त को परमशांति का अनुभव हुआ और प्रतिमा निर्मित किए जाने का कार्य प्रारंभ कर दिया गया। भारतीय कला की प्राचीनतम प्रतिमा यक्ष की ही प्राप्त हुई है। महाभारत की कथाओं में भी यक्ष का वर्णन प्राप्त होता है। अतः कहा जा सकता है कि, भारतीय प्रतिमा शिल्प में यक्ष को प्रथमतः स्थान प्रदान किया गया, जिसका आशय उपासना था। बौद्ध धर्म में महायान शाखा के दार्शनिकों के द्वारा बुद्ध प्रतिमा निर्माण तथा पूजा को प्रोत्साहन दिया गया। फलतः भगवान बुद्ध को भारतीय कला में उत्खचित किया जाने लगा। दार्शनिकों ने समाज में प्रतिमा पूजा की विशेषताओं तथा उपयोगिता और उसके महत्व का प्रतिपादन किया। अतः यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नही होगी कि उपासकों का ध्यान आकृष्ट करने तथा धार्मिक कार्यों की उपयोगिता हेतू देव प्रतिमाओं की कल्पना की गई। तत् संबंध में उपनिषदिय उल्लेख इस प्रकार है -

सगुण ब्रह्माविषयकंमानसकमानसव्यापार उपासनम।
उपासकानां कार्यार्थे ब्रह्मणों रुप कल्पना ।।[6]

वहीं वेदांत में प्रतिमा के लिए उल्लेख किया गया है- चराचर जगत ब्रह्म मय है, कण-कण में उसका अधिवास है। अतः किसी भी वस्तु या देवज्ञ प्रतिभूति को प्रतीक रुप में स्वीकार किया जा सकता है। 7 प्रतिमा के लिए कालांतर में बेर, वपु, तनु, विग्रह इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग किया जाने लगा जो किसी भी आकार प्रकार में निर्मित प्रतिकृति या प्रतिमा के लिए प्रयुक्त किया जाता था।

प्रतीकवाद के सिद्धांतों के अनुसार - अप्रस्तुत, अदृश्य, एवं अमूर्त विषय वस्तु के प्रतीक को विविध द्रव्यों के द्वारा मूर्त रुप में प्रस्तुत किया जाता है। अतएव अदृश्य, निराकार अथवा अप्रस्तुत ब्रह्म के स्वरुप में निर्मित प्रतिमा ही उनका प्रतिनिधित्व करती है। किंतु यहाँ प्रतिमा शब्द केवल दैवीय अर्थ में प्रयुक्त किया जाना सर्वथा उचित नही है। बल्कि अन्यान्य अर्थों में समायोजन किया जाना यथोचित लगता है। प्राचीन भारतीय सामाजिक जीवन व्यवस्था में लोगों की जीवन पद्धति तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोंण धर्म से अनुप्राणित रहा है, साथ ही सांस्कृतिक परक् भी था। जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रतिमा विज्ञान किसी भी देश या क्षेत्र विशेष की सभ्यता व संस्कृति तथैव इतिहास पर प्रकाश डालने के लिए सर्वोत्तम कृतियाँ है।

प्रतिमा निर्माण संबंधि प्रासंगिकता

रामायण के अनुसार - अश्वमेध यज्ञ के संपादन हेतू श्री राम के द्वारा स्व पत्नी सीता की अनुपस्थिति में स्वर्णांकित प्रतिमा निर्मित कराया गया था।

कांचनी मम पत्नी च दीक्षयज्ञाश्च कर्मणि ।।[8]

पुराणों में भी प्रतिमा के लिए अनेकों प्रसंग प्राप्त होते है। गोकूल से मथुरा प्रस्थान करते हुए, श्री कृष्ण अक्रूर जी से कहते है, मिटटी और प्रस्तर से बनाई गई प्रतिमाओं की उपासना अधिक दिवस तक करने से प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। तत् संबंध में क्रिया तथा ज्ञान योग भक्ति का मार्ग श्री कृष्ण द्वारा उद्धव जी को बताते हुए कथन आता है कि - प्रतिमाओं को काष्ठ, मिट्टी, प्रस्तर, बालुका एवं मणि द्वारा निर्मित करना चाहिए।

शैली दारुकामयी लौही लेप्या, लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्ट विधस्मृताः ।।[9]

विष्णुधर्मेत्तर पुराण में भी प्रतिमा निर्माण संबंधि विधान बताया गया है। वहीं मत्स्य पुराण में उल्लेखित है कि ताम्र, रजत, स्वर्ण इत्यादि धातुओं से प्रतिमा निर्माण कराना चाहिए।[10] छठी शताब्दी में रचित् वृहत्संहिता में उद्धृत है, ताम्र धातु से निर्मित प्रतिमोपासना से प्रजा वृद्धि, रजत से ऐश्वर्य और यश की प्राप्ति, स्वर्ण प्रतिमा से स्वास्थ्य लाभ, मिट्टी से समृद्धि व बल की अधिक्यता, शिलाखण्ड से विजयेंद्र एवं धनलाभ, काष्ठ से आयुवृद्धि, तथा मणियों से निर्मित प्रतिमा लोकोपकारी होती है। भोज रचित् समरांगण सूत्र एवं श्री कुमार कृत शिल्परन् में भी प्रतिमा द्रव्य की ओर इंगित कराया गया है।[11] अर्वाचीन स्त्रोतों के अनुसार-धातु निर्मित सभी प्रतिमाओं को पाकजा की कोटि में रखा जाता है। इनमें गंधजा को लेप्या के अंतर्गत रखा गया है। तथा कौसुमी को क्षणिक की श्रेणी में अधिमान्य किया गया है। गोपी नाथ राव कहते हैं, मिट्टी, लकड़ी, पत्थर व मूल्यवान मणि अथवा मिश्रित धातुएँ भी प्रतिमा निर्माण के लिए उपयुक्त द्रव्य है।

सिंधु सभ्यता के हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ों से मिट्टी, प्रस्तर एवं धातु निर्मित प्रतिमाएँ प्राप्त है। यह प्रागैतिहासिक कलाकृतियाँ ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय इतिहास व कला के अध्ययन में महत्वपूर्ण आयाम प्रस्तुत करते हैं। इन प्रतिमाओं तथा मुद्राओं के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि, यहाँ की ज्ञात प्रतिमाओं में अंग - प्रत्यंग एवं रुपाकार में कलाकारों के द्वारा विशेष ध्यान नही दिया गया है, तथा ये यदा - कदा प्रतिकात्मक ही दृष्टव्य होती है। किंतु फिर भी यहाँ प्रतिमा निर्माण के साथ ही मूर्ति पूजा का सूत्र प्राप्त किया जा सकता है कि, सिंधु स्थल से मिलें मातृ देवियाँ तथा पशुपतिनाथ पूजार्थ निर्मित किए गए होंगे। वहीं प्राप्त प्रतिमाओं में वृक्ष के नीचे आसनस्थ स्त्री, जिसके दोनो पार्श्वों में दो पुरुषों का स्थानक हाथ जोड़े हुए अंकन है। प्रतिमा विज्ञान के विद्वान इसे पृथ्वी देवी मानते है।[12] ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों के रचनाकाल में यज्ञ की प्रधानता के प्रमाण मिलते हैं, ना कि प्रतिमोपासना का। परंतु उक्त काल के साहित्यों में सांकेतिक लक्षण अवश्य प्राप्त होते हैं। ग्रंथ - षड्विंश ब्राह्मण में दैवीय अर्चाओं के मानवों की तरह हंसने, रोने, क्रोध करने, नेत्र पलक व अपलक करने, नृत्य करने इत्यादि के प्रसंग उद्धृत मिलते है -

देवायतनम कम्पन्ते, दैव प्रतिमा हसंति।
क्रक्रुद्धंति स्फुरंति स्विधंति उन्मीलन्ति च।।[13]

विद्वान टी. गोपीनाथ तथा भट्टाचार्य ने उपरोक्त प्रसंगों के आधार पर ब्राह्मण काल में पूजा पद्धति व्याप्त थी, ऐसा स्वीकार करते हैं। तथा यह अनुमान लगाते हैं कि, वैदिक काल, उपनिषद् काल एवं ब्राह्मण काल इन तीनों ही कालों के समाज में प्रतिमा या विग्रह उपासना प्रचलन में थी।

सूत्र काल में अन्य कालों की अपेक्षा प्रतिमा पूजा की विद्यमानता अधिक थी। आपस्तंभ व गृह्यसूत्र में स्पष्टतया प्रतिमा पूजा का उल्लेख मिलता है। रामायण कालीन समाज में अर्चा या प्रतिमा पूजन का प्रचलन विशेष तथा व्यापक हो गया जान पड़ता है। रामायण के प्रसंगों के अनुसार - लंकापति दशानन अपने साथ सदैव शिव लिंग

रख कर भ्रमण करता था।

यत्र तत्र यातिस्म रावणों राक्षेश्वराः। जम्बूनदमयं लिंग स्थाप्य[14]

स्वर्ण धातु से निर्मित अर्चा का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। इसी तरह महाभारत में अनुदेश प्राप्त होता है - समस्त देवताओं से संलग्न पवित्र तीर्थों का दर्शन तथा वहाँ स्थापित देव विग्रहों की अराधना अवश्य ही करनी चाहिए।

शालग्राम इति ख्यातो विष्णुवद भूतकर्मकः ।।[15]

भारतीय कला में प्रतिमा निर्माण और पूजा संबंधि विभिन्न साक्ष्यों के विश्लेषण पश्चात् यह निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि जन मानस मे ईश्वरोपासना अथवा भक्ति के निमित्तार्थ किसी निश्चित आधार की आवश्यकता अनुभव की गई। फलस्वरुप प्रतिमा को ही सर्वोपरि माध्यम माना गया जिससे उपासना व भक्ति में ध्यान केन्द्रित किया जा सके। अतः प्रतीक या प्रतिमा अथवा अर्चा निर्माण की पृष्ठभूमि धार्मिक स्वरुप अर्थात उपासना के लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए माना जा सकता है।

संदर्भ-सूची :

1. पतंजलि, महाभाष्य, 7 पृष्ठ क्रमांक – 45.
2. ऋग्वेद - 10/130/5.
3. पूर्वोक्त.
4. उपाध्याय वासुदेव शरण, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान – 1982.
5. पूर्वोक्त - पृष्ठ क्रमांक – 08.
6. ऋग्वेद – पूर्वोक्त.
7. पूर्वोक्त.
8. वाल्मिकी रामायण, 3 काण्ड - 91/5/25.
9. श्रीमद् भागवत गीता - 10/48/3.
10. श्रीमद् भागवत गीता पूर्वोक्त.
11. विष्णु धर्मेन्तर पुराण - 43/32.
12. मोहन जोदड़ो एण्ड इण्डस वैली सिविलाइजेशन, मार्शल, जिल्द - 1 पृष्ठ क्र. 59.
13. षड्विंश ब्राम्हण - 10/5.
14. वाल्मिकी रामायण, उत्तरकाण्ड - 73/29-30.
15. वेद व्यास, महाभारत - 3/84/134.

•